

समकालीन हिंदी कथा—लेखन और स्त्री विमर्श

डॉ. स्मिता जैन, एसोसिएट प्रोफेसर,
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, एच.डी. जैन कॉलेज, आरा

अपनी अस्मिता, आत्म-चेतना, आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, समता, समानाधिकार तथा अस्तित्वबोध के प्रति नारी की सजगता स्वातंत्र्योत्तरकालीन साहित्य में उभरने लगी थी। सन् 1960 के बाद के साहित्य में यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गई। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशक जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी की निर्णायक भूमिका, सक्रियता तथा संघर्ष के द्योतक तो हैं ही, कथा-साहित्य में विशेषकर उपन्यास में स्त्री लेखन में अपूर्व रचनात्मक उन्मेष के दशक हैं। 'स्व' के प्रति सजगता, अपने अधिकार एवं अस्तित्व की चेतना स्त्री-विमर्श की मुख्य शक्ति है जो समकालीन हिंदी साहित्य में प्रखर-से-प्रखरतर होती गई है।

युग-युग से होते आए शोषण और दमन के प्रति पनपी स्त्री-चेतना ने ही स्त्री-विमर्श को जन्म दिया। वस्तुतः स्त्री-विमर्श समकालीन विचार चिंतन है। 'समकालीन' शब्द काल-बोधक न होकर उस चेतना का संवाहक है जिसे आज हम जी रहे हैं। यह उस बोध का भी परिचायक है, जिससे आज हम सब संपृक्त हैं। समकालीन से अभिप्राय उस समस्त कालखंड से है, जो हमने जिया है, भोगा है और जिसे जी रहे हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में विशिष्ट विषय, विशिष्ट समाज अथवा विशिष्ट वर्ग को विमर्श के केंद्र में रखते हुए सशक्त लेखन हुआ है। 'बग महिला' की 'दुलाई वाली' से शुरू हुआ महिला कथा-लेखन का सफर आज जिस मुकाम पर पहुँचा है वहाँ रस भीने सपनों के साथ-साथ उन्मुक्त व स्वच्छंद गगन में पंख फैलाकर उड़ने की आकांक्षाएँ हैं, लक्ष्य-प्राप्ति के हौसले हैं। इस सुदीर्घ विकास-यात्रा में न जाने कितने मोड़, कितने पड़ाव और कितने पाथेय उसे मिले हैं और न जाने कितनी महिला कथाकारों ने अपनी सहभागिता निभाई है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के कारण हमारी मध्ययुगीन दृष्टि तथा पारंपरिक मानवीय संबंधों में अंतर आया। समाज, संस्कृति व व्यक्तित्व में आमूलचूल परिवर्तन हुए। स्त्री का बदलता हुआ रूप भी उभरकर सामने आया। परिवार में स्त्री का नया व्यक्तित्व और उसकी मानसिकता उभरी। एक ओर थे पुराने मूल्य और स्त्री की गुड़िया सरीखी छवि, दूसरी ओर आधुनिक सोच, नारी-जागरण, स्त्री-शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार और बाहर की दुनिया। बदलती सामाजिक परिस्थितियों में भारतीय नारी जूझती हुई बराबर अपनी पारंपरिक छवि से अलग होती गई और बदलाव की प्रक्रिया को अपनाते हुए अपनी पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील होती गई। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन-मिजाज सब कुछ बदला। यह विश्वव्यापी लहर थी। स्त्री अपने को नये सिरे से तलाश रही थी। रिश्तों की, समाज, परिवार और परिवेश में अपनी भूमिका की नये सिरे से व्याख्या कर रही थी। वह अपनी अस्मिता की नई पहचान कर और करवा रही थी।

'नारीवादी' सोच ने समाज के हाशिए पर खड़ी स्त्री के लिए केन्द्र में जगह बनाने की माँग की। समकालीन विमर्श का यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा था जिसने महिला सम्मेलनों के माध्यम से सांगठनिक रूप ले लिया था। 1995 में बीजिंग में हुए विश्व महिला सम्मेलन में 185 देशों की लगभग तीस हजार गैर सरकारी संस्थाओं ने भागीदारी की। ध्यान देने की बात यह है कि इनका विषय स्त्री थी।

सन् 1960 के आसपास का दौर कहानियों के लिए विशेष उल्लेखनीय और उत्तेजक रहा। आजादी के बाद मोहभंग की स्थिति में वर्जनाओं, प्रतिबंधों और विसंगतियों से जूझते जन-साधारण की भावनाएँ, परिस्थितियाँ और परेशानियाँ कहानी की विषय-वस्तु बनीं। समाज में स्त्रियों की स्थिति पर केंद्रित उपन्यास तो आरंभ से ही महिला और पुरुष कथाकारों ने लिखे। पर शती के पिछले दशकों में यह लिखना कुछ दूसरे ढंग का था। इधर की रचनाओं में श्रम सच विगलन, आत्मदया, आत्मदान में गौरव के एहसास जैसी अनुभूतियों के लिए जगह नहीं रह गई थी।

समकालीन हिंदी कथा साहित्य का सर्वाधिक उल्लेखनीय पक्ष है हिंदी कथा-लेखिकाओं द्वारा जोरदार ढंग से अपनी उपस्थिति दर्ज कराना। इन कथा-लेखिकाओं ने नारी स्थिति को केन्द्र में रखकर नारी का हर विध, हर रूप, हर पक्ष का ऐसा खुलासा किया कि जो एक क्रांतिकारी बदलाव था। प्रभा खेतान (छिन्नमस्ता), कृष्णा

सोबती (ए लड़की), नासिरा शर्मा (संग भरसर, आसिया, शाल्मली), मैत्रेयी पुष्पा (फैसला, वसुमती), मन्नु भंडारी (यही सच है, शेष फिर, नई नौकरी, कमरे, कमरा और कमरे, बंद दरवाजों के साथ), उषा प्रियंवदा (वापसी), सिम्मी हर्षिता (चक्रभोग, उसका मन, बंजारन की हवा), गीतांजलि श्री (अनुगूँज, बेलपत्र), कुसुम अंचल (आज का दिन, मैच मेकर), राजी सेठ (सदियों से), मृदुला गर्ग (टुकड़ा-टुकड़ा आदमी, पोंगल) लवलीन (उसके सुख का सपना), क्षमा शर्मा (लव स्टोरीज 94, घर-घर, जिन्न, कस्बे की लड़की), जया जादवानी (कब्र से बाहर), अलका सरावगी (महँगी किताब, लाल मिट्टी की सड़क, यह भी सही है, वह भी सही है), सुरभि पाण्डेय (अहल्या), चित्रा मुद्गल (जिनावर) आदि ऐसी कहानी-लेखिकाएँ हैं जिन्होंने समस्याओं की फेनिल लहरों के बीच ऊम-चूम करती नारी का बहुरंगी, बहुआयामी चित्रण प्रस्तुत किया। अपने अस्तित्व, अपनी अस्मिता की तलाश में संलग्न नारी को भी उन्होंने खोजा और अपनी रचनाओं में ढाला।

समकालीन लेखन में कहानी की कमान महिलाओं ने बिल्कुल इस तरह सँभाली जिस तरह वे अन्य गतिविधियों में मोर्चा सँभालती हैं। कहानी के समानांतर उपन्यास के सृजन में भी इन लेखिकाओं ने कमान सँभाली। कृष्णा सोबती, मन्नु भंडारी, उषा प्रियंवदा जैसी वरिष्ठ लेखिकाओं ने तो 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'दिलोदानिश', 'आपकी बंटी', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेषयात्रा' जैसे उपन्यास लिखे ही थे, उसके बाद की पूरी पीढ़ी स्त्री को केन्द्र में रखकर उपन्यास रचना के क्षेत्र में उतर आई। मृदुला गर्ग का 'कंठ गुलाब', प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता', चित्रा मुद्गल का 'आंवा', चन्द्रकांता का 'कथा सतीसर', मैत्रेयी पुष्पा का 'चाक', 'विजन', अलका सरावगी का 'शेष कादम्बरी', सुनीता अग्रवाल की 'उस पार की जोगिन', शीला रोहेकर का 'तावीज' आदि ऐसे उपन्यास हैं जिनमें स्त्री-विमर्श की पहल दिखाई देती है। इन महिला रचनाकारों में एक अलग प्रकार की साहसिकता है जो इनके नारी-पात्रों में प्रकट होती है। घटित तथ्यों में ही नहीं आकाशित सत्यों को भी इन्होंने औपन्यासिक विन्यास दिया।

स्त्री की सहज दैनिक आवश्यकताओं की बेबाक स्वीकृति करने वाली पहली सशक्त क्लासिक रचना कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी' थी। सोबती ने एक ऐसी अनछुई सच्चाई के ऊपर सदियों पुराना पाखंड का पर्दा उठाकर एक तरफ रख दिया था कि पाठक एकबारगी सोबती की कलम की ताकत के सामने सकते में आ गया। यह एक आरंभ था-निर्भयता से सच्चाई का सामना करने का। उनकी 'ए लड़की', 'यारों के यार', 'नामपट्टिका', 'तिनपहाड़', 'सिक्का बदल गया' जैसी कहानियाँ तथा 'डार से बिछुड़ी', 'जिंदगीनामा', 'दिलोदानिश' जैसे उपन्यासों में मरणासन्न माँ की अपनी बेटी को भरपूर जीवन जीने की सलाह, एक साहसिक परामर्श है। क्योंकि इस भरपूर जीवन जीने में पुरुष-संसर्ग भी सम्मिलित है। 'नामपट्टिका' में अविवाहित कृत्या और शिव का साथ-साथ रहना आज के 'लिव इन रिलेशनशिप' का ही एक रूप प्रस्तुत करता है तो 'दिलोदानिश' पितृसत्तात्मक समाज के सामंती वातावरण में स्त्री की सामाजिक हैसियत का खुलासा है।

समकालीन यथार्थ को चित्रा मुद्गल ने अनूठे भाषा शिल्प तथा मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। उनकी 'गेंद', 'भूख' तथा 'जिनावर' कहानियाँ इस दृष्टि से क्लासिक मानी जाती हैं। अपनी धारदार, चौकन्नी, निर्भीक तथा संवेदनशील लेखनी के माध्यम से उन्होंने समाज तथा उनके संघर्षों को वाणी दी है। अपनी सृजन-यात्रा के आरंभिक दौर में उन्होंने 'सफेद सेनारा' जैसी कहानी लिखी जिसमें अनुभवसंपन्न विवेकशील भावना का ऐसा आवेग है जो विचलित नहीं करता बल्कि धैर्य के रास्ते जीवन में कहीं और गहरे उतरने को बाध्य करता है। विचारशून्य समय में खुद को निरावृत्त करने का ऐसा प्रयास साहस की संज्ञा की परिधि से बाहर निकल जाता है। यहाँ से एक लेखिका की साहस-यात्रा शुरू होती है और अपसंस्कृति की पराकाष्ठा की अभिव्यक्ति मिलती है उनकी 'वाइफ स्वैपी' जैसी कहानियों में। यह किसी स्त्री की आत्मपीड़क अभिव्यंजना नहीं, अपितु खुलेपन की ओर बढ़ रहे समाज में सिकुड़ती जाती स्त्री की ऐसी दास्तान है जिसे कमोडिटी की तरह इस्तेमाल किया जा रहा है।

स्त्री की अस्मिता को पालतूपन से मुक्ति दिलाने के जबरदस्त प्रयास के रूप में उनकी 'दशरथ का वनवास' 'दुल्हन', 'ट्रेन छूटने तक', 'त्रिशंकु' (पहला खंड), 'लिफाफा', 'मोर्चे पर', 'दरमियान', 'एंटीक पीस', 'जब तक विमलाएँ हैं' (दूसरा खंड), 'अढ़ाई गज की ओढ़नी', 'अवांतर कथा', 'तकिया' (तीसरा खंड) जैसी कहानियाँ ध्यान आकृष्ट करती हैं। क्योंकि उनके कथ्य में न केवल विद्रोह, विरोध और आक्रोश की ध्वनियाँ हैं बल्कि उनकी सोच में भविष्य और वर्तमान के प्रति एक दार्शनिक विवेक भी परिलक्षित होता है। 'आंवा' उपन्यास की विमला बेन इसकी सशक्त मिसाल है। इस बहुप्रशंसित, बहुचर्चित उपन्यास ने स्त्री लेखन के तमाम दायरों को तोड़ते

हुए प्रतिमान स्थापित किए। सुनंदा की शवयात्रा में शामिल विमला बन ने कंधा केवल किसी औरत की मय्यत को नहीं दिया, वरन् उस स्त्री-चेतना को दिया जिसका गला घोटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई। विमला बेन की आवाज पर सारी औरतों का साथ देना नारी चेतना का परिचायक है।

हिंदी के महिला कथा लेखन में मन्नू भंडारी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी 'यही सच है' से लेकर 'अकेली' और 'त्रिशंकु' जैसी चर्चित कहानियाँ गहरी संवेदनशीलता और अनुभव की सच्चाई प्रस्तुत करती हैं। आर्थिक स्वावलंबन के साथ-साथ मानसिक व भौतिक स्वतंत्रता की आकांक्षा को दर्शाती कहानियाँ हैं—'हार', 'एक कमजोर लड़की की कहानी'। 'यही सच है' में संबंधों का सच उद्घाटित हुआ है तो 'एरवॉनी आकाश नाय' मध्यवर्गीय स्त्री की घुटन का मार्मिक एहसास कराती है। 'आपका बंटी' में उन्होंने एक ओर यदि अंतर्जगत की बारीकियाँ उद्घाटित की हैं तो दूसरी ओर आज की नारी की पीड़ा को बड़े संवेदनशील हाथों से छुआ है।

इसी दौर की कथाकार उषा प्रियंवदा अपनी कहानियों में नारी जीवन की त्रासद स्थितियों के बयान में पूर्ण सफल रही हैं। नए जीवन-बोध से संपृक्त कहानी 'मछलियाँ' में समाज में स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों और नारी सबलीकरण के मुद्दा को उठाया गया है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'मोहबंध', 'एक कोई दूसरा' और 'सागर पार संगीत' भी ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' नारी-जीवन की त्रासद स्थितियों का बयान है तो 'रुकोगी नहीं राधिका' इससे कुछ आगे बढ़कर राधिका की बंधन-मुक्ति और एकांतवास के टूटने की कथा है। 'शेष यात्रा' उपन्यास तो नारी जीवन की त्रासद स्थितियों का सबल दस्तावेज ही है।

'बोलने वाली औरत' भारतीय समाज को ही नहीं, परिवार में औरतों को भी खटकती है। ममता कालिया की कहानी 'बोलने वाली औरत' में अग्निशिखा परिवार की शर्तों के बीच जीती हुई न केवल अपना स्वत्व खोने लगती है बल्कि अभिव्यक्ति के लिए निकलने वाले शब्द भी चटखने लगते हैं। पर, ठंडी पड़ी राख के भीतर चिनगारी छिपी रहती है, यह उर्मिला पवार की 'औरत जात' की माई अपने कार्यों से स्पष्ट कर देती है। स्त्री जीवन की विसंगतियों को उभारती मृदुला गर्ग की कहानी 'तीन किलो की छोरी' एक ओर परंपरा को ढोती बीमार मानसिकता को दर्शाती है और दूसरी ओर बुनकर जाति की शारदा बेन के प्रति मास्टर भाई की अस्वस्थ बहू के भाव को दिखलाकर गाँव में सुगबुगाती प्रगतिशीलता से आश्वस्त का भाग जगाती है। 'उसके हिस्से की धूप' से लेकर 'चितकोबरा' तक देह की उपस्थिति और मन की अनुपस्थिति के बीच स्त्री की पारंपरिक छवि को तोड़ने की चेष्टा है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के उषाकाल में उभरने वाला एक विशेष उल्लेखनीय नाम है प्रभा खेतान का जिनकी रचनाओं में स्त्री-यंत्रणा को आसानी से देखा जा सकता है। 'छिन्नमस्ता', 'अपने-अपने चेहरे', 'स्त्री पक्ष', 'पीली आँधी' संयुक्त परिवार में स्त्रियों के बनते-बिगड़ते रिश्तों की टकराहट की दास्तान है। नारी का बदलता रूप, उसका आत्मविश्वास एवं विद्रोह, अपनी अस्मिता की पहचान में दिसावरी करती अद्भुत जीवट वाली नारी के तमाम रूप मार्मिकता के साथ इनके लेखन में दृष्टिगोचर होते हैं। 'छिन्नमस्ता' की प्रिया हो अथवा जूड़ी, वे अपनी विचार शक्ति के बल पर अन्याय का विरोध करती हैं। उनमें निर्णय लेने की जो क्षमता है वही स्त्री-विमर्श का द्योतक है। 'अग्नि संभवा' साहसी चीनी महिला आई.वी. के जीवन की गाथा है तो विदेशी पृष्ठभूमि पर आधारित 'आओ पे पे घर चले' वैश्विक स्तर पर स्त्री जीवन के भयावह सच को उजागर करता है। यह हिंदी का पहला उपन्यास है जो वैश्विक स्तर पर पारिवारिक विघटन और स्त्री पीड़ा को अंकित करता है। नारी दलन एवं उत्पीड़न को उधेड़ती, स्त्री होने की जकड़नों के खिलाफ निरंतर संघर्ष करती उनकी नायिकाएँ 'स्वयं होने' तक की यात्रा के क्रम में लगाव और अलगाव के रेशों से रची उस दुर्लभ दृष्टि का अर्जन करती हैं जो रचनात्मक होने के साथ-साथ नारी दृष्टि भी है।

ज्योत्स्ना मिलन की कहानी 'बा' औरत की सीलन भरी खामोश जिंदगी की मार्मिक अभिव्यक्ति है। सूर्यबाला की 'सुमिंतरा की बेटियाँ' में पियरिया और झुमारिया की अभिव्यक्ति वर्षों के दुःख, अपमान और उत्पीड़न का प्रतिफल है। 'पगला गई है भागो' में मैत्रेयी पुष्पा ने सामाजिक व्यवस्था की विसंगतियों पर चोट की है तो 'विजन' में अन्याय और दमन का साहस तथा क्षमता से विरोध करने वाली विद्रोही नारी एवं अन्याय और दमन को बर्दाश्त करने वाली नारी, दोनों का बेबाक चित्रण है। 'चाक' की नैना सारंग का विद्रोही व्यवहार स्त्री-विमर्श का अत्यंत आक्रामक कदम है तो 'त्रिया हट' स्त्री-विमर्श की एक महीन बानगी है। उर्वशी, मीरा, मामी तथा विविध वय के स्त्री पात्रों के संवाद और व्यवहार में विमर्श हैं ही, उनके चुप और रुदन से भी विचार नियामक उजागर होते हैं।

अल्पना मिश्र अपने गिने-चुने समकालीनों की तरह अकेली हैं जो अनछुए विषयों पर लिखती हैं। 'मुक्ति प्रसंग', 'मिड डे मील', 'तलाश', 'बेदखल', 'जिम्मी के सपने', लिफ्ट से गायब', 'इस जहां में हम', 'छावनी में बेघर' आदि कहानियाँ अलग-अलग वैयक्तिक, सामाजिक रिश्तों का आख्यान बनाती हैं। स्त्री का संघर्ष ही मुख्य रूप से कहानी में जगह पाता है।

नासिरा शर्मा की कहानी 'मेरा घर कहाँ' में सोना के भीतर यह प्रश्न बार-बार उठता है और वह घर ढूँढ़ने की असफल कोशिश करती है। मृणाल पाण्डेय की 'कोठरी की लड़की' औरत के जीवन की बेबसी की कहानी है तो राजी सेठ की 'स्त्री' बेबसी और समझौते के बीच अपनी इच्छाओं को कुचलने का मार्मिक वृत्तांत! मेहरुन्सिसा परवेज की 'साल की पहली रात', रश्मितन्वा की 'पार्टी' आदि कहानियों में भी नारी स्वातंत्र्य का मुखर हुआ है। मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' की मरियाना का कथन औरत खुद एक विडंबना है—एक महत्वपूर्ण बाध है जो स्त्री के भीतर खुद पैदा होता है। मंजुल भगत की 'अनारो' में निम्न मध्यवर्गीय नारी की पीड़ा को वाणी मिली है—'काम ही ने तन ढका, काम ही ने पेट भरा। काम ही सुहाग, काम ही स्वामी।'

मुक्ता के कहानी संग्रह 'सीढ़ियों का बाजार' में संकलित तीन कहानियाँ 'आँच', 'मंडलावाली' और 'उस शहर का नाम' स्त्री-विमर्श के उस वास्तविक चेहरे का निर्माण करती है जो सच्चे यथार्थबोध से उपजता है। शहर से लेकर गाँव और संपन्न मध्यम तबके से लेकर गरीब तबके के स्त्री-जीवन की विडंबना, करुणा और संघर्ष को अभिव्यक्ति देती ये कहानियाँ स्त्री को नियति के सहारे पड़ी रहने वाली दुःख की गठरी बनाकर नहीं छोड़ देती बल्कि प्रतिरोध की एक सिंफनी निर्मित करती है जिसमें आज के दौर की हर स्त्री अपना स्वर मिला सकती है।

शीला रोहेकर के उपन्यास 'तावीज' में चाकू की धार पर चलने को मजबूर स्त्री द्वारा झेली जा रही मर्मांतक पीड़ा के जरिए पारिवारिक स्थितियों के बीच असहज होते, टूटते संबंधों की निर्ममता से खबर ली गई है तो सुनीता अग्रवाल की 'उस पार की जोगिन' में नारी जीवन के संघर्ष को एक नये अंदाज में रूपायित किया गया है। चन्द्रकांता के 'कथा सतीसर' की डॉ. कात्या तीसरी बेटी को जन्म देने वाली माँ को भी बधाई देती है। डॉ. कात्या का यह आचरण स्त्री को मान और प्रतिष्ठा दिलाने वाला है। यह स्त्री-विमर्श का ही प्रभाव है।

व्यंग्य प्रतिकार का एक ऐसा पैना हथियार है जो लोकहित को ध्यान में रखकर रचे गए साहित्य का अपरिहार्य अंग बन चुका है। यही कारण है कि समकालीन व्यंग्य-लेखन के क्षेत्र में लता शर्मा का पहला व्यंग्य-संग्रह 'खट्टे... खारी... कुरकुरे' अपनी धमाकेदार उपस्थिति दर्ज कराता है। संग्रह की पहली रचना 'शिक्षित या साक्षर' एक तरह से स्त्री-विमर्श पर ही केंद्रित है। शिक्षक संघ के चुनाव में महिला खड़ी हो यह पुरुष-प्रधान समाज बर्दाश्त नहीं कर पाता। उस प्रवृत्ति पर शर्मा ने रोचक ढंग से प्रहार किया है।

इसमें दो राय नहीं कि औरत की दुनिया में पीढ़ी-दर-पीढ़ी बहुत बदलाव आया है। उसकी सोच बदली है, आत्मविश्वास गगन छूने लगा है, वह आत्मनिर्भर हुई है। लेकिन पुरुष-प्रधान समाज स्त्रियों के इस बदलाव को आसानी से नहीं पचा पाता। वर्तमान में भले ही नारी-विमर्श की जड़ें फैलती जा रही हों, फिर भी उभरती हुई स्त्री-चेतना को समाज आज भी कुचल देना चाहता है। आज भी स्त्री की अस्मिता से समाज परेशान हुए बिना नहीं रहता। फिर भी नारी-जीवन के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को समकालीन कथा-लेखन में न केवल परिमाणान्तरक बल्कि एक गुणात्मक परिवर्तन के रूप में भी परिलक्षित किया जा सकता है।

वास्तव में सत्तर के दशक में किये गए स्त्री संघर्ष का ही परिणाम है कि आज स्त्री सबलीकृत होने का दावा कर सकती हैं। आज यौनवाद, जाति और वर्गवाद की समस्याओं पर स्त्री ज्यादा सशक्त रूप से बोल पा रही हैं। मानव अधिकार के लिए किए गए अन्य संघर्षकर्ताओं के साथ स्त्री कंधे-से कंधा मिलाकर बहुतेरे मुकामों पर लड़ रही हैं।

समकालीन हिंदी कथा-लेखन के विवेचन के क्रम में यह तथ्य खुलकर सामने आता है कि परंपरागत मान्यताएँ, कालबाह्य रूढ़ियाँ, पुरुष-प्रधान समाज से होने वाले अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आज नारी कदम उठाने का साहस कर रही है। वैचारिक साम्य के अभाव में पति से स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर रही है। आत्माभिमान, अस्तित्व बोध, आत्मचेतना और आत्म-निर्भरता के कारण आज नारी आत्मविश्वास से लबरेज हो रही है। स्त्री-विमर्श जैसे विचार चिंतन से वह सशक्त हो रही है। विवशता, पीड़ा, मानसिक दुःख और असुरक्षित जीवन जीते हुए भी स्त्रियों ने व्यवस्था का मोहरा बनकर कभी समझौते किए हैं तो कभी विद्रोह और कभी मानवीय बनकर सहज आत्मीय समर्पण से नवीन संसार को साकार करने का प्रयास किया है। नारी की

विवशता के बीच से उसकी ऊर्जा को उभारने के प्रयास सराहनीय हैं पर साहसिकता के नाम पर यौन भावना का चित्रण अवश्य आपत्तिजनक कहा जाएगा। जहाँ यह चित्रण कथ्य की मूल संवेदना का उजागर करने में सहायक हैं, वहाँ किसी को आपत्ति नहीं होगी, पर उसका अनावश्यक वर्णन आपत्तिजनक है। अब आने वाला समय ही उसकी सार्थकता और दिशा को निश्चित करेगा।

